|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-6), रविवार, 07 जुलाई 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/TYN89V-2-7U

परमात्मा की सर्व व्यापकता का ज्ञान

दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना, भगवान श्रीकृष्ण जी एवं परम पूज्य स्वामी श्री गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के चरणों में वन्दन करते हुए आज के विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

भगवान की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम लोगों का ऐसा सद्भाग्य जागृत हुआ है कि हम इस मानव जीवन को सफल बनाने के लिए गीता जी के अध्ययन, पारायण, स्वाध्याय, इसके उच्चारण को सीखने, इसको कण्ठस्थ करने, इसके सद्गुणों को अपने जीवन में लाने एवं किस प्रकार भगवद्गीता हमारे जीवन में आए, इसी प्रकार के प्रयासों में अग्रसर हो गए हैं।

पता नहीं हमारे कोई इस जन्म के पुण्य कर्म हैं, कोई पूर्व जन्म के कोई पुण्य कर्म हैं या फिर इसी जन्म में हम पर किसी सन्त - महापुरुष की कृपा दृष्टि हो गई है या भगवान की ऐसी कृपा हो गई है जिस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया है कि हम लोग इस परम ज्ञान के आस्वादन में, इसको प्राप्त करने में लग गए हैं।

बिना भगवान की कृपा से कोई भी भगवद्गीता जैसे महाग्रन्थ को पढ़ सके यह सम्भव नहीं है और इसलिए बार-बार हम लोगों के मन में इस बात का भान होना चाहिए और इस बात का विशेष अनुभव होना चाहिए कि हम लोग चुने गए हैं। भगवान की कृपा से ही भगवद्गीता हमारे जीवन में आई है। हम लोगों के ऊपर भगवान की विशेष कृपा हुई है जिस कारण हम भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुने गए हैं।

हमने सोलहवाँ अध्याय देखा, उसमें तीनों गुणों का चिन्तन देखा, सत्रहवें अध्याय में हमने भगवान की कृपा देखी। तीन प्रकार के भोजन, तीन प्रकार के तप, तीन प्रकार के दान और तीन प्रकार के यज्ञ हमने देखे। आज हम नवें अध्याय का चिन्तन करेंगे।

सातवें अध्याय से भगवान ने ज्ञानयोग का उपदेश आरम्भ किया। सातवें अध्याय में जब भगवान ज्ञानयोग का उपदेश कर रहे थे उस समय अर्जुन ने सात प्रश्न किये।

भगवान ने उन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए अपनी बात को छोड़कर अर्जुन के सातों प्रश्नों के उत्तर दिए। जब भगवान ज्ञानयोग का उपदेश कर रहे थे तो अर्जुन को समझाने के लिए वे बहुत महत्त्वपूर्ण बात कर रहे थे, इसलिए भगवान ने नवें अध्याय के पहले श्लोक में ही अर्जुन को बताया कि यह तुम समझ नहीं सके कि यह कितना महत्त्वपूर्ण अध्याय है इसलिए यह बात मैं तुम्हें पुनः

बताऊँगा। उन्होंने दो श्लोकों में इसका पूरा माहात्म्य बताया और फिर तीसरे श्लोक में यह बताया कि अश्रद्धावान की दुर्गति कैसे होती है? यह तुम समझते नहीं हो और यदि तुम्हारी श्रद्धा नहीं है तो तुम्हारी दुर्गति भी हो जाएगी।

यह अध्याय बहुत ही गूढ़ है। समझने की दृष्टि से थोड़ा क्लिष्ट भी है। यह बहुत ही गूढ़ और महत्त्वपूर्ण अध्याय है। हमें इस अध्याय को अधिक एकाग्रता से समझना चाहिए।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन:- श्रीभगवान जी ने बिना अर्जुन के कोई प्रश्न किए सीधे ही अपनी बात आरम्भ कर दी।

श्रीभगवान बोले - हे अर्जुन! ते अनसूयवे - तुम अनसूय हो।

श्रीभगवान को अर्जुन के दो गुण सबसे अधिक प्रिय हैं। उनको भगवान ने बारम्बार कहा है।

एक अनघ और दूसरा अनसूय।

अनघ - पाप रहित। जिसने पाप न किया हो।

अनसूय - **जो किसी में दोष नहीं देखता हो। जो दूसरे की बुराई नहीं देखता हो, जो दूसरों की निन्दा नहीं करता हो।**

हम सब तो बिल्कुल उनके विपरीत हैं। जहाँ किसी की कमी नहीं भी दिख रही हो तो भी कमी को खोज निकालते हैं। कितने भी बड़े महापुरुष हों, हम तो उनमें भी कमी निकाल कर उन कमियों पर ही पुस्तक लिख सकते हैं, परन्तु अर्जुन सर्वथा विपरीत हैं। उन्हें किसी के भी कोई दोष नहीं दिखते हैं। वह कभी किसी की निन्दा नहीं करते हैं।

श्रीभगवान बोले - हे अर्जुन! मैं तुम पर इसीलिए कृपा करूँगा कि तुम्हारा यह सबसे बड़ा गुण है कि तुम अनसूय हो।

गुह्य, गुह्यत्तम, गुह्यत्तमम। (जैसे Good, better, best) होता है वैसे ही Secret, Big Secret, Most Secret)

अपने इस भक्त के लिए मैं परम गोपनीय बात बताने वाला हूँ और विज्ञान सहित ज्ञान को मैं पुन: बताता हूँ जिसको जानकर तुम संसार के दु:खों से मुक्त हो जाओगे। भगवान ने इसमें पहली बात यह बताई।

विज्ञान सहितम्-

ज्ञान और विज्ञान इसमें क्या अन्तर है ?

आदिशङ्कराचार्य भगवान से लेकर अनेक आचार्य, महापुरुषों ने इस शब्द पर बहुत विचार किया और केवल इस श्लोक के इस शब्द पर दस-दस पृष्ठ की टीकाएँ महापुरुषों द्वारा लिखी गई हैं। उन्होंने इसे बहुत विशिष्ट माना है।

आदिशङ्कराचार्य भगवान ने अध्यात्म दृष्टि से इसका विचार किया। उन्होंने कहा-

ज्ञान का अर्थ है परोक्ष ज्ञान।
विज्ञान का अर्थ है अपरोक्ष ज्ञान।

परोक्ष ज्ञान- जो गुरु या शास्त्र से प्राप्त हो जाए। जिस प्रकार हम स्कूल जाते हैं और गुरुओं या पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करते हैं, यह परोक्ष ज्ञान होता है। गुरु के द्वारा या शास्त्रों के द्वारा हमने पढ़कर, सुनकर ज्ञान सीख लिया, यह परोक्ष ज्ञान कहलाता है।

अपरोक्ष ज्ञान- अनुभव से प्राप्त किया हुआ ज्ञान, अपरोक्ष ज्ञान कहलाता है। पढ़ा, सुना या लिखा हुआ ज्ञान होता है और अनुभव से प्राप्त किया हुआ विज्ञान कहलाता है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं, ज्ञान का अर्थ आत्म ज्ञान और विज्ञान का अर्थ है सांसारिक ज्ञान।

आदिशङ्कराचार्य भगवान की दृष्टि अधिक मान्य है। सबसे ज्यादा विद्वानों ने इन्हीं के ज्ञान को मान लिया कि जो ज्ञान अनुभव से आता है वह विज्ञान हो जाता है।

यूट्यूब पर जब हम खाना बनाने के तरीके देखते हैं तो यह ज्ञान है, पर जब उस विधि से उसे स्वयं बनाया तो वह विज्ञान हो गया क्योंकि वह अब अनुभव में आ गया।

श्रीभगवान कहते हैं कि तुम्हारे पास दृष्टि है इसलिए मैं तुम्हें यह ज्ञान सुनाता हूँ।

एक गुरु जी से शिष्य ने कहा कि मैं धन्य हो गया कि मुझे आप जैसे गुरु प्राप्त हुए। गुरु जी ने कहा कि सच्चे गुरु की कोई कमी नहीं है परन्तु सद् शिष्य नहीं मिलते हैं। कुछ लोग पूछते हैं कि श्रीभगवान ने अर्जुन को ही भगवद्गीता क्यों सुनाई, किसी और को क्यों नहीं सुनाई? श्रीभगवान तो दूसरों को भी सुना देते, परन्तु उन्हें अर्जुन जैसा सद्शिष्य कभी मिला ही नहीं जो अनसूय हो, जो उनका शिष्य बनने का अधिकारी हो। सद्गुरु को भी सद्शिष्य की खोज रहती है और श्रीभगवान को अर्जुन के रूप में ऐसे शिष्य मिल गए कि उन्होंने अर्जुन के माध्यम से गीता का प्राकट्य कर दिया।

गुह्यत्तम- यदि किसी के घर में तिजोरी है तो क्या हम उसे खुले आँगन में रख सकते हैं? उसे किसी कमरे के अन्दर अलमारी में छुपा कर रखते हैं। जो तिजोरी में है वह तो छिपा हुआ ही है परन्तु जो तिजोरी है वह भी छिपी हुई होनी चाहिए। उसे गोपनीय ही रखा जाता है। कुछ लोग अपनी कमाई भी छुपा कर ही रखते हैं, किसी को नहीं बताते हैं। महिलाओं में आयु छिपाने की आदत है। वे कभी अपनी सही आयु नहीं बताती हैं। योगी हमेशा अपनी उम्र अधिक बताते हैं। गोपनीय बात वह है जो सबसे न कही जा सके। कुछ योग्य होते हैं तो उन्हें बताई जा सकती है ताकि उसका दुरुपयोग न हो जाए।

एक बार गाँव में बहुत अच्छे सन्त पधारे, बिल्कुल बैरागी और शुद्ध महात्मा। वे गाँव में बैठ कर कथा कर रहे थे। गाँव के जो सेठ थे उन्होंने कभी कथा, प्रवचन नहीं सुना था। उन्हें लगता था ये सब ठग हैं और पैसे लूटने आते हैं। संयोग से जिस समय महात्मा जी की कथा चल रही थी, सेठ जी गाड़ी से उस पण्डाल के सामने से निकले। पण्डाल के सामने भीड़ के कारण सेठ जी की गाड़ी वहाँ अटक गई तो जो सत्सङ्ग वहाँ चल रहा था वह सेठ जी के कानों में पड़ गया। जब पुण्य जागृत होने लगते हैं तो न चाहते हुए भी ऐसी घटनाएँ घटने लगती हैं। सुनकर सेठ जी को बहुत अच्छा लगने लगा। उन्होंने ड्राइवर से कहा कि तुम गाड़ी लगाओ मैं अभी आता हूँ। वहाँ बैठकर उन्होंने कुछ कथा सुनी। उन्हें वह बहुत अच्छी लगी, उन्हें लगा कि यह तो बहुत बढ़िया है, यह तो सुनने लायक है। यह तो अपने जीवन के लिए बहुत काम की बातें हैं। अगले दिन वह समय पर पहुँच कर वहाँ बैठ गए। उन्हें लगा कि उन्हें देखकर स्वामी जी को लगेगा कि गाँव के सबसे बड़े सेठ उनकी कथा सुनने आए हैं। उनको बहुत अच्छा लगेगा परन्तु स्वामी जी तो बैरागी थे। उन्हें उससे क्या लेना-देना था? सेठजी अपने हीरों का हार पहन और सोने की छड़ी लेकर बहुत अहङ्कार के साथ कथा में गए। उन्हें लगा कि महाराज जी तो उन्हें नमस्ते करेंगे, परन्तु महाराज जी ने तो उन्हें देखा ही नहीं। उनके मन को तो ठेस लगी। उन्हें लगा था कि मेरा तो स्वागत होगा परन्तु ऐसा नहीं हुआ। सेठजी को कथा आज भी बहुत अच्छी लगी। उन्होंने उस दिन पूरी कथा सुनी। सेठजी पहली बार गए थे तो उन्होंने देखा कि कुछ लोग आते हैं तो कुछ

फल उनके सामने रखकर माथा टेक देते हैं। लोग फूल लेकर आते और उनके चरणों में प्रणाम करते हैं।

सेठ जी ने सोचा कि कल मैं जब प्रसाद लेकर आऊँगा तब महाराज जी मेरी तरफ देखेंगे, तब उन्हें पता चलेगा। अगले दिन सेठ जी गाड़ी में नौ पेटी सेब रखकर लेकर आए और मजदूर से कहा- सब पेटियाँ ले जाकर महाराज जी के सामने रख दो। उन्हें लगा कि आज तो महाराज जी मेरी तरफ देखेंगे परन्तु उस पर भी उन महाराज जी ने सेठ जी की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें इस बात से बहुत दु:ख पहुँचा कि नौ पेटी सेब देने के बाद भी महाराज जी ने मेरी तरफ ध्यान नहीं दिया। उन्हें कथा बहुत अच्छी लगी, उनका मन कथा में तो लग रहा था पर अहङ्कार होने के कारण उनका मन दु:खी होता था। वह तीन-चार दिन तक कथा में आते रहे परन्तु महाराज जी ने उनकी तरफ नहीं देखा।

एक दिन सेठ जी ने देखा कि एक व्यक्ति आया और महाराज जी से कहा कि मुझे आपसे दीक्षा लेनी है। गोस्वामी जी ने उन्हें तिथि बता दी तो सेठ जी को लगा कि यदि दीक्षा वालों से ही महाराज जी मिलते हैं तो मैं भी दीक्षा ले लेता हूँ। वह महाराज जी के पास जाकर बोले कि मुझे भी दीक्षा लेनी है। स्वामीजी ने पहली बार सेठ जी की तरफ देखा और तुरन्त ही आँखें नीचे करके बोले, ठीक है! देख लेंगे। सेठ जी बोले, उसे तो आपने तिथि भी बतला दी। महात्मा जी बोले कि वह कई वर्षों से सत्सङ्ग में आ रहा है। सेठ जी के मन को बहुत ठेस लगी।

इतने में एक व्यक्ति आया और बोला महाराज जी आपने आज हमारे घर भिक्षा लेने के लिए बोला था, आप चले चलिए। महाराज जी ने कहा, ठीक है चलिए। सेठ जी को लगा कि महाराज जी भिक्षा लेने तो घर भी जाते हैं, उन्हें लगा कि क्या गरीब के घर खाना खाएँगे? मैं तो ऐसा नवरत्न थाल खिलाऊँगा कि महात्मा जी ने कभी खाया ही न होगा। अगले दिन कथा पूरी होने के बाद सेठ जी ने कहा कि महाराज आज भिक्षा के लिए मेरे घर में पधारो। महाराज जी ने कहा कि मैं वैसे भिक्षा के लिए नहीं जाता हूँ। सेठ जी ने कहा, मैंने कल ही देखा कि आप गए थे तो महाराज जी ने कहा कि वह तो मेरा एक बहुत पुराना शिष्य था और बहुत आग्रह कर रहा था। वैसे मैं कहीं नहीं जाता। सेठ जी बोले, आप सन्त हो आप ऐसे भेदभाव कैसे कर सकते हो?

मैं भी तो आपका शिष्य हूँ। मैंने आपसे दीक्षा भी माँगी तो आपने नहीं दी। मेरे घर में भिक्षा के लिए तो आपको आना ही पड़ेगा। महाराज जी ने देखा कि यह तो आज अड़ ही गए तो उन्होंने कहा, ठीक है! कल मैं तुम्हारे घर आऊँगा परन्तु मैं भोजन नहीं पाऊँगा। मैं कमण्डल लेकर आऊँगा। जो कुछ होगा उसी में डाल देना। मैं आश्रम में आकर ही खाऊँगा तो सेठ जी ने सोचा कि चलो मान तो गए। सेठ जी ने शहर से हलवाई बुलाया और कहा, मावे की खीर बनानी है क्योंकि कमण्डल में तो वही चलेगी। उन्होंने बहुत ही शानदर काजू, बादाम, पिस्ता सब डलवा कर खीर बनवाई। अगले दिन महाराज जी सेठ जी के घर गए तो सेठ जी को लगा कि महाराज जी मेरा वैभव देखकर बहुत प्रसन्न होंगे परन्तु महाराज जी ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। सेठ जी ने एक बार फिर से आवेदन किया कि महाराज जी यहीं पा लेते तो अच्छा था परन्तु महाराज जी ने मना कर दिया।

जब सेठजी खीर लेकर उसे कमण्डल में डालने लगे तो उसमें कुछ हीक सी आई। सेठ जी ने जब पास आकर देखा तो कहा कि महाराज इसमें कुछ गड़बड़ है। महाराज जी ने कहा नहीं, ठीक है, तुम डाल दो। जब सेठ जी ने थोड़ी और खीर डाली तो झुक कर देखा कमण्डल के अन्दर गोबर भरा हुआ था। उन्होंने कहा, महाराज जी इसमें तो गोबर है, इसमें मैं मावे की खीर कैसे डाल सकता हूँ?

महाराज जी बोले, मैं भी तो यही कह रहा हूँ कि इस गोबर से भरे हुए कमण्डल में मावे की खीर कैसे जाएगी? तुम्हारे माथे में तो अपने धन का अहङ्कार भरा हुआ है और तुम ही सोचो कि इस गोबर भरे दिमाग में मेरे ज्ञान के मावे वाली खीर कैसे चली जाएगी? जब तक तुम इस दिमाग से इस अहङ्कार को नहीं निकालोगे, तुम्हें तब तक कथा अच्छी तो लगेगी परन्तु तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।

अब सेठ जी की आँखें खुल गईं। वह महाराज जी के चरणों में गिर पड़े और खूब रोए। उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ और अपनी भूल समझ में आ गई। मैं अपने धन का अहङ्कार कर रहा था, वह तो गोबर के समान है। इसी पश्चाताप से सेठ जी का हृदय परिवर्तन हो गया। सन्त तो कृपालु थे, उन्होंने सेठ जी को गले लगाया और कहा कि कल आना, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।

अधिकारी को ही ज्ञान देना महत्त्वपूर्ण है। गुरु और सन्त सामने वाले का अधिकार देखकर ही उसको ज्ञान देते हैं। अर्जुन को

भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता बताई क्योंकि वे इसके अधिकारी हैं। वे यह ज्ञान सबको नहीं दे सकते। दोष युक्त अपात्र को ज्ञान पचता भी नहीं है इसलिए उसे देने का भी लाभ नहीं।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन:- श्रीभगवान बोले कि हे अर्जुन! यह ज्ञान सहित विज्ञान, राजगुह्य, पवित्र, अति उत्तम, तुरन्त फल देने वाला और अविनाशी है।

भगवान ने यहाँ पर कुछ विशेषताएँ बताई हैं। तीन बातें अर्जुन को बताई है-

विद्या, गुह्य और पवित्र।

तीन बातें भगवान ने अपने स्तर पर बताई।

राज विद्या, राज गुह्य, पवित्रतम।

यह जो ज्ञान है यह सब विद्याओं का राजा है, राजविद्या है। कुछ लोगों को लगेगा कि यह राज्य करने की विद्या है परन्तु ऐसा नहीं है। यह सभी विद्याओं में जो श्रेष्ठ है वह विद्या है, वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ। यह राज गुह्यतम में भी सबसे अधिक श्रेष्ठतम जो गोपनीय बात है, वैसी है और गोपनीय होने पर भी अति पवित्र है। हमारी जो गोपनीय बातें (सीक्रेट्स) होती हैं वह बुरी (डर्टी सीक्रेट्स) होती हैं। यदि किसी को बतलाएँ भी तो छवि ही खराब हो जाए। श्रीभगवान कहते हैं, मेरा जो रहस्य है वह बहुत पवित्र है, अति उत्तम है, सुख प्रदान करने वाला है, धर्म युक्त है और प्रत्यक्ष फल देने वाला है। प्रत्यक्ष फल का यह मतलब नहीं है कि हमने अभी कार्य किया है और इसी पल फल मिल जाएगा, ऐसा नहीं है।

किसान ने बीज बोया, उसमें जो फसल निकलने में समय लगता है, वह तो लगेगा ही, वैसे ही प्रत्यक्ष फल है, उसमें भी समय लगता है।
जब एक बेटी बारह- तेरह साल की होने लगती है तो माँ उसे रोटियाँ बनाना सिखाती है। जब वह पहली बार रोटी बेलती है तो वह गोल नहीं बनती है, धीरे-धीरे रोटी गोल होने लगती है। उसमें भी कम से कम छ: महीने का समय लग जाता है। जब छठे महीने उसकी रोटी गोल हो जाती है तो इसका मतलब यह नहीं कि उस दिन उसको उसका फल मिला, ऐसी बात नहीं है। उसको फल तो उसी दिन मिलना शुरू हो गया था जब उसने रोटी बेलना शुरू किया था। छठे महीने में तो उसका अभ्यास पूर्ण हो गया।

प्रत्यक्ष का अर्थ यह नहीं है कि हम इस जन्म में आज पूजा कर रहे हैं तो हमें आज ही भगवद् प्राप्ति हो जाएगी। वह इस जन्म में भी हो सकती है और दस जन्म भी लग सकते हैं। यह सब हमारे अभ्यास पर निर्भर करता है कि हम उस पर कितना समय लगाते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि जो एक बार इस अभ्यास में लग गया वह मुझ तक अवश्य ही पहुँचेगा।

अव्ययम् और अविनाशी क्या है?
यह कभी नष्ट नहीं होता। हमने देखा कि तीन वर्ष के बालक भी कभी भगवद्गीता सुनाते हैं। जो तीन-चार साल के बालक हैं उन्हें भगवद्गीता कैसे कण्ठस्थ हो जाती है? इसका मतलब यह है कि वे पूर्व जन्म के अभ्यासी हैं। माँ के साथ बैठकर कक्षा करते हैं

तो उनका दोहराना हो जाता है और वह जल्दी से बोलना शुरू कर देते हैं। अव्यय होने पर भी ज्ञान सहित विज्ञान को मथना पड़ता है।

एक बार राम जी ने हनुमान जी से प्रश्न किया कि हमारा - तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?

हनुमान जी मुस्कुराए, साथ में भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न जी भी खड़े थे। सबको बहुत कौतूहल हुआ कि अब हनुमान जी क्या उत्तर देंगे? परन्तु हनुमान जी महाराज भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे ज्ञानियों के शिरोमणि हैं। तभी तो जब भगवान ने उन्हें पूछा था तो भरतजी भी बोले कि बताओ हनुमान जी, आपका और भैया का क्या सम्बन्ध है? हनुमान जी बोले कि मेरा कोई एक सम्बन्ध नहीं है, अपितु तीन सम्बन्ध हैं। अब तो राम जी भी सोचने लगे कि यह तीन सम्बन्ध कौन से हैं?

हनुमान जी ने कहा कि-

1) व्यवहार दृष्टि से आप मेरे स्वामी हैं। मैं आपका सेवक हूँ।

रामजी बोले कि दूसरी कौन सी दृष्टि है? हनुमान जी बोले,

2) अध्यात्म दृष्टि- अध्यात्मदृष्टि से आप ब्रह्म हो, मैं जीव हूँ। आप भगवान हो मैं आपका भक्त हूँ।

भरतजी बोले अब तीसरा कौन सा सम्बन्ध है? इसके बारे में बतलाइए।

हनुमान जी मुस्कुराए और बोले-

अध्यात्मदृष्टि और व्यवहार दृष्टि से ऊपर एक और है-

3) तत्त्व दृष्टि- तत्त्व दृष्टि से जो आप हो वही मैं हूँ।

"अहं ब्रह्मास्मि" और "तत् त्वम् असि"

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

इस दृष्टि से आप में और मुझ में कोई अन्तर नहीं है।

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहीं ।
प्रेम गली अति सांकरी जामें दो न समाहीं ॥

उत्तरकाण्ड में इसका बहुत विस्तार आया है।

उसमें एक कथा है -

गरुड़ जी महाराज को एक सन्देह हो गया कि वास्तव में यह भगवान राम मेरे भगवान विष्णुजी के अवतार हैं? ब्रह्म हैं? ईश्वर हैं? यह मुझे समझ नहीं आ रहा।

काकभुशुण्डि जी ने कहा -

जौं सब कें रह ज्ञान एकरस।
ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥
माया बस्य जीव अभिमानी।
ईस बस्य माया गुन खानी॥3॥

अर्थात् यदि जीव को एक रस का अखण्ड ज्ञान हो जाए तो फिर ईश्वर और जीव में कैसे भेद रहेगा। अभिमानी जीव माया के वश में है और तीनों गुणों की खान ईश्वर के वश में है।

परबस जीव स्वबस भगवंता।
जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया।
बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥4॥

अर्थात् जीव परतन्त्र है और श्रीभगवान स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं और श्रीभगवान एक हैं, तथापि उनके बिना करोड़ उपाय भी बेकार हैं। यह बात इसलिए आ रही है कि श्रीभगवान ने कहा, यह ज्ञान अव्यय है, प्रत्यक्ष है और इसको विज्ञान सहित मथना पड़ता है। लगातार अभ्यास और वैराग्य से ही इस से छुटकारा मिल सकता है। श्रीभगवान ने अर्जुन से पूछा कि मन को पकड़ना बहुत मुश्किल है, यह तो बहुत तेज भागता है।

श्रीभगवान बोले, एकदम सही बात है। अर्जुन बोले कि क्या इस मन को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है? श्रीभगवान ने कहा, किया जा सकता है। अर्जुन ने पूछा कि यह कैसे कर सकते हैं?

श्रीभगवान बोले-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।6.35।।

हे अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य से इस मन को पकड़ा जा सकता है। जब तक भोगों से वैराग्य नहीं होगा और एक साधन का अभ्यास नहीं होगा तब तक मन को नियन्त्रण में लाना कठिन बात है। गरुड़ महाराज जी को सन्देह हो गया तो वह बड़े विचलित और परेशान हो गए। उन्होंने सोचा विष्णु भगवान जी को पूछूँ तो सङ्कोच आया कि अपने स्वामी पर ही शङ्का कर रहा हूँ, ऐसा प्रश्न कैसे कर सकता हूँ? तो गरुड़ जी महाराज शिव जी के पास गए। शिव जी ने गरुड़ जी का स्वागत किया। वे पार्वती जी के साथ कहीं जा रहे थे। गरुड़ जी ने शिवजी को प्रणाम किया और शिवजी को अपना सन्देह बताया।

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही।
कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा॥2॥

अर्थात् शिवजी भगवान ने कहा कि यह जो तुम सन्देह कर रहे हो, यह ऐसे ही चलते-फिरते बताने की बात नहीं है, जल्दी में नहीं बता सकता। इसका एक उपाय है। एक बार कोई विवेचन या कथा सुन लेंगें और हमें परम ज्ञान प्राप्त हो जाएगा तो भगवान शिव जी बोले, ऐसा नहीं होगा। जब तक दीर्घकाल तक कोई सत्सङ्ग नहीं करता है तब तक उसका संशय भङ्ग नहीं हो सकता। अभी मैं तुम्हें इतना समय नहीं दे सकता परन्तु तुम आए हो तो इसका समाधान करना तो आवश्यक है। मैं तुम्हें ऐसी जगह भेजता हूँ जहाँ यह सत्सङ्ग और कथा प्रवचन हमेशा चलते रहते हैं। जब तुम उस ज्ञान की गङ्गा में डुबकी लगाओगे तो तुम्हारे सब संशय दूर हो जाएँगे।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

अर्थात् शिवजी भगवान बोले, सत्सङ्ग के बिना कथा सुनने को नहीं मिलती है और श्रीभगवान की कथा सुने बिना मोह का भङ्ग नहीं होता। मोह भङ्ग हुए बिना श्रीराम के चरणों में अचल प्रेम नहीं होता।

इसलिए हे गरुड़! तुम काकभुशुण्डि के पास जाओ। शिवजी पार्वती से बोले कि मैंने गरुड़ को काकभुशुण्डि के पास भेजा है। पार्वती जी बोलीं, यह काकभुशुण्डि कौन है? शिवजी बोले, यह एक कौवा है। पार्वतीजी अचरज से बोली कि गरुड़ जी महाराज पक्षियों के राजा हैं और कौवा पक्षियों में सबसे निकृष्ट है, नीचा है। एक राजा को ज्ञान लेने के लिए उसकी प्रजाति के सबसे नीचे वाले के पास भेज दिया। यह तो आपने ठीक नहीं किया परन्तु इसमें भी कोई तो राज होगा?

गरुड़जी काकभुशुण्डि जी के पास गए।

शिवजी बोले- मैंने उन्हें इसलिए भेजा कि,

खग ही जाने खगहि की भाषा।

पक्षी को पक्षी की भाषा जल्दी समझ आ जाएगी। जो जिस प्रवृत्ति का होता उसे उसकी बात जल्दी समझ आ जाती है और गरुड़जी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने श्रद्धापूर्वक काकभुशुण्डि जी से कुछ प्रश्न किये।

काकभुशुण्डिजी ने उत्तर देना प्रारम्भ किया।

गरुड़जी को आश्चर्य हुआ कि एक कौवे की योनि में कौन सिद्ध महापुरुष य़हाँ विराजमान है जो इतनी गहरी बातें इतनी सहजता से कहने वाला हो सकता है? गरुड़ जी ने प्रश्न किया और काकभुशुण्डि जी ने बहुत सारा समाधान किया। गरुड़ जी ने कहा कि मुझे शेष समाधान बाद में दीजिए पहले मुझे जो शङ्का हो गई है, उसका समाधान कीजिए। आप कौन हैं? पहले मुझे यह बताइए? आप पूर्व जन्म के कोई बड़े सिद्ध योगी हैं। यदि इतने बड़े योगी हैं तो आपको इस योनि में क्यों आना पड़ा? ऐसा क्या कारण है? पहले आप मुझे अपने पूर्व जन्म की कथा बताइए।

काकभुशुण्डि जी बोले कि एक जन्म की कथा सुनने से काम नहीं चलेगा तो गरुड़ जी बोले जितने भी जन्म की कथा हैं सब सुनाइए। उन्होंने कहा कि कई जन्मों की कथा सुनने से भी नहीं चलेगा? गरुड़ जी बोले तो फिर क्या करना पड़ेगा? तुम्हें सत्ताईस कल्पों की कथा सुननी पड़ेगी। गरुड़ जी बिना पलक झपकाए काकभुशुण्डि को देखते रह गए।

सत्ताईस कल्प - लाखों वर्षों का एक कल्प होता है।

सत्ताईस कल्पों की कथा? आप इतने कल्पों से यहाँ पर हैं? काकभुशुण्डि जी मुस्कुरा कर बोले, हाँ! यदि पूरी बात समझनी है तो इतनी कथा तो सुननी पड़ेगी। गरुड़ जी बोले, यदि आप मुझे सुनाने के लिए तैयार हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप जैसे महापुरुष की कथा सुनने से तो मेरा कल्याण हो जाएगा। आप बताइए, आप कौन हैं?

काकभुशुण्डि जी बोले, हजारों वर्ष पूर्व, हजारों जन्म पूर्व, सत्ताईस कल्प पूर्व, मेरा जन्म अयोध्या में ब्राह्मण कुल में हुआ था और मैं उत्तम भक्त था। संयोग से अयोध्या में अकाल पड़ गया। अकाल पड़ा तो सभी लोग अयोध्या छोड़कर इधर-उधर जाने लगे। मैं अपनी मण्डली के साथ उज्जैन आ गया। अयोध्या में हम राम जी की कथा करते थे। उज्जैन शिव जी की नगरी है, यहाँ सभी शिव-शिव करते हैं। महाकाल का स्थान और संयोग से मैं जिस आश्रम में पहुँचा, वहाँ के गुरुजी बड़े दयालु थे और वह भी शिवजी के परम भक्त थे। मैं वहाँ रहने लगा तो धीरे-धीरे मेरी शिवजी की भक्ति हो गई। उत्तम गुरु के सान्निध्य में मैंने उनसे शिव मन्त्र प्राप्त किया और जपने लग गया।

बहुत वर्षों तक भक्ति करते हुए मेरी भक्ति प्रगाढ़ हो गई। ऐसे में मुझे एक दिन गुरुजी ने कहा कि बेटा तुम तो अयोध्या के रहने वाले हो तो तुमने वहाँ राम जी की बहुत सी कथा सुनी होंगी। तुम मुझे राम जी की कथा सुनाओ न, परन्तु मेरी बुद्धि ऐसे फिरी। शिव भक्ति करने का मेरे पर यह परिणाम हो गया। वैसे तो मेरा कल्याण होता परन्तु मैंने उल्टी बुद्धि से शिवजी की भक्ति की और इस कारण मेरे मन में इस प्रकार गड़बड़ी हो गई। मैं शिवजी को सबसे बड़ा देवता मानने लगा और विष्णु भगवान जी को उनसे नीचे का देवता मानने लगा और शिव जी के सामने राम जी की कोई जरूरत ही नहीं लगी। मैंने गुरुजी को उत्तर दिया कि आप भी कैसी बात करते हो? आप महाकाल महादेव के भक्त हो, क्या आप भी राम कथा सुनना चाहते हो? यह तो नौसिखियों का काम है। जब हम छोटे थे तब हमने सुनी थी, अब तो हम शिव भक्त हैं। अब हमें राम कथा की क्या आवश्यकता है? गुरुजी बोले, तुम कैसी बातें कर रहे हो! राम जी और शिव जी की भक्ति में कोई अन्तर नहीं है। गुरु जी ने मुझे बहुत समझाया परन्तु मेरी बुद्धि पर ऐसे पत्थर पड़े हुए थे कि मैंने गुरु जी की कोई भी बात नहीं सुनी। मेरे मन में गुरु जी के प्रति विद्रोह हो गया कि इन्हें कुछ पता ही नहीं है। फिर मेरे मन में गुरु जी के प्रति ऐसा भाव आया और मैं वहाँ से निकल गया और उस दिन के बाद गुरु जी को बड़ी हीन दृष्टि से देखने लग गया। गुरु जी तो एकदम श्रेष्ठ और दयालु थे, वह मेरी हरकतों को देखकर भी क्रोध नहीं करते थे।

एक बार में शिवालय के भीतर बैठकर शिवजी का जप कर रहा था। उस समय गुरुदेव वहाँ पधारे। मैंने उन्हें आते हुए देख लिया परन्तु आँखें बन्द करके जप करता रहा कि मुझे उन्हें प्रणाम न करना पड़े। अपने अभिमान में मैंने गुरु का अपमान किया। गुरुजी दयालु थे उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि मैंने उन्हें प्रणाम नहीं किया परन्तु साक्षात् महादेव के सामने अपने गुरु का अपमान किया जो कि शिवजी के बड़े भक्त थे। महादेव जी को यह अच्छा नहीं लगा और उसी समय आकाशवाणी हुई -

मंदिर माझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा।अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।
तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति बिरोध सोहाइ न मोही।।
जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।
जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।
बैठ रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।
महा बिटप कोटर महुँ जाई।।रहु अधमाधम अधगति पाई।।

अर्थात् मन्दिर में आकाशवाणी हुई। शिवजी बोले मूर्ख, अभिमानी, गुरुजी अत्यन्त दयालु हैं। हे मूर्ख! मैं तुम्हें श्राप दूँगा। गुरु का नीति विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम्हारा वेद मार्ग भ्रष्ट हो जाएगा। जो अपने गुरु से ईर्ष्या करते हैं वे करोड़ों लोकों तक नरक में पड़ते हैं और वहाँ से निकलकर पशु, पक्षी योनि प्राप्त करते हैं और हजारों जन्म तक दु:ख पाते हैं। हे पापी! तुम गुरु के सामने इसी तरह बैठे रहे। तेरी बुद्धि पाप से भर गई है, जा तू सर्प हो जा। इस अधोगति में आकर भी बड़े भारी पेड़ के खोखर में जाकर पड़ा रह। जब ऐसी आकाशवाणी हुई तो मैं काँपने लग गया और मुझसे ज्यादा मेरे गुरुजी काँपने लग गए।

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप।।

करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि।।

अर्थात् गुरु जी ने महादेव के आगे हाहाकार किया कि कृपा करो, दया करो। यह आपने क्या कह दिया? गुरु जी को देखकर, मुझ में और भी करुणा का आगमन हो गया। गुरु जी ने तुरन्त ही साष्टाङ्ग दण्डवत करके शिवजी को प्रणाम किया और शिवजी को प्रसन्न करके, उनका क्रोध कम कैसे हो? उसका विचार करके भगवान शिव की स्तुति करना आरम्भ किया।

यह काकभुशुण्डि जी के गुरु जी की बनाई हुई स्तुति है-
रुद्राष्टकम का पाठ

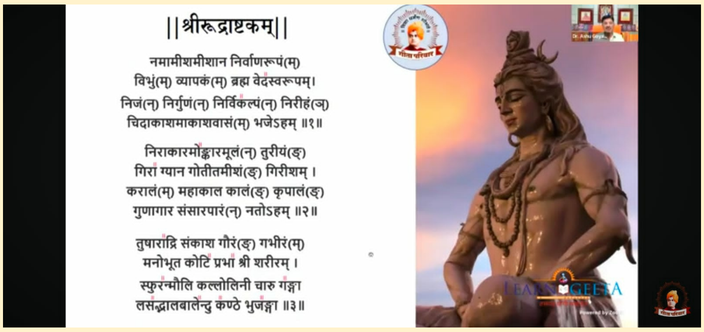

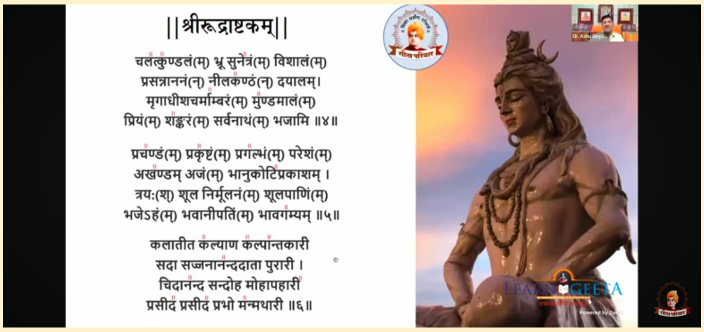

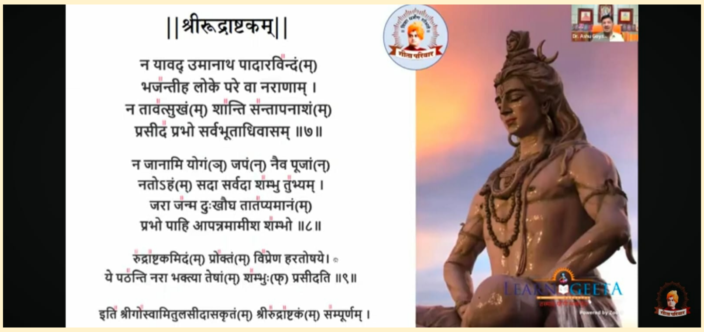

मैं तो कुछ नहीं जानता, न मैं पूजा जानता हूँ, न पाठ जानता हूँ, मैं तो सदा सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु! आप मेरी इस दु:ख से रक्षा कीजिए। हे शिव शम्भू! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप प्रसन्न होइए। गुरुदेव ने भगवान शिव की अद्भुत स्तुति की। भगवान रुद्र स्तुति से प्रसन्न हो गए। मैंने अपने गुरुदेव का, एक ब्राह्मण का इतना निश्चल प्यार देखा, अपराध करने वाले को भी बचाने के लिए। मेरे गुरुदेव कितने करुणावान हैं।

सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु॥108 क॥

ऐसा विचार हुआ तो मन्दिर में फिर से आकाशवाणी हुई। हे गुरु श्रेष्ठ! तुम वर माँगो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।

जौं प्रसन्न प्रभो मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु॥108 ख॥
तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।

तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥108 ग॥
संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल॥108 घ॥

अर्थात् ब्राह्मण बोले, हे प्रभु! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि आपका मुझ पर स्नेह है, तो मुझे अपने चरणों की भक्ति दे देना, फिर दूसरा वर दीजिए और फिर भगवान शिव के चरणों में प्रणाम करके गुरुदेव ने मेरे लिए कृपा माँगी और कहा कि इस बालक पर आप क्रोध न करें। हे शिव! आप इस पर कृपालु हों। थोड़े समय में ही आपका श्राप इससे छूट जाए, ऐसी कृपा कर दीजिए और आप कुछ ऐसी कृपा करो कि इसका कल्याण हो जाए।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥1॥

मेरे लिए ऐसी हित की बात सुनकर पुनः आकाशवाणी हुई।

एवम् अस्तु।
ऐसा ही होगा।

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥2॥

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है, मैंने क्रोधित होकर इसे श्राप दिया है परन्तु तुम्हारी साधुता देखकर इस पर विशेष कृपा करूँगा। जो क्षमाशील परोपकारी होते हैं वो मुझे प्रिय हैं, परन्तु मेरा श्राप व्यर्थ नहीं जाएगा। यह हजार जन्म अवश्य लेगा परन्तु जन्म और मरण का जो दुःख होता है वह इसे नहीं मिलेगा। किसी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। इसका ज्ञान अव्यय होगा। सारे पूर्व जन्म की स्मृति बनी रहेगी और इसकी मृत्यु भी भक्ति में ही हो जाएगी।

अब तुमने सेवा में मन लगाया है तो मेरी कृपा से तुम्हारे मन में राम जी की भक्ति उत्पन्न हो जाएगी। भगवान शिव ने आकाशवाणी की, उनके वचन सुनकर गुरुजी बहुत हर्षित हुए और मैं सर्प योनि में पहुँच गया। कुछ काल बीतने पर मेरा वह शरीर छूट गया। मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैं पुन: अजगर बना। उसमें भी मुझे कष्ट नहीं हुआ। बार-बार मैं शरीर धारण करता और छोड़ता रहा। जिस प्रकार मनुष्य अपने वस्त्र उतारता और पहनता है, इसी प्रकार मैं भी अपना शरीर छोड़ता गया और सर्प योनि में बार-बार जन्म-मरण की क्रिया को पूरा करता रहा। हजार वर्षों तक मैंने सर्प योनि में बार-बार जन्म लिया और मरता रहा परन्तु मेरा ज्ञान नहीं गया। अन्तिम शरीर मैंने फिर से ब्राह्मण का पाया। ब्राह्मण शरीर में, मैं सब ब्राह्मणों के साथ खेलता और रघुनाथ जी की क्रियाएँ करता रहता। बड़े होने पर पिताजी मुझे पढ़ाने लगे। मैं समझता और पढ़ता था पर मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सारी विषय वासनाएँ भाग गईं थीं। केवल रामजी के चरणों की कृपा मेरे मन में लग गई। माता-पिता काल वश होकर मर गए और मैं राम जी का भजन करने के लिए वन में पहुँचा। वहाँ पर ज्ञानमार्गी बाह्मणों से मिला। उनके सत्सङ्ग सुनता लेकिन वह दूसरे सत्सङ्ग सुनाते परन्तु मेरे हृदय मैं तो राम जी का वास था और एक समय ऐसा आया कि मैंने लोमश ऋषि के दर्शन किए।

लोमश ऋषि बहुत पुरातन ऋषि हैं और ऋषि परम्परा में सबसे श्रेष्ठ हैं। कई कल्पों तक जिनका शरीर नहीं जाता है। ऐसे लोमश ऋषि जो सिद्ध देव हैं उनके दर्शन मुझे हो गए। लोमश ऋषि बोले कि तुमने वेदान्त पढ़ा है। तुम भक्ति के मार्ग पर क्यों चलते हो? तुम तो सिर्फ वेदान्त ही पढ़ो लेकिन मैं उनसे बार-बार आग्रह करता रहा कि मुझे तो राम जी की भक्ति करनी है। लोमश ऋषि अत्यन्त कृपालु थे और एकदम नरम स्वभाव के थे परन्तु मेरा भी जो हजारों वर्ष पूर्व आग्रह का स्वभाव था वह अभी तक गया नहीं। माँग तो मैं सही बात रहा था परन्तु उसका माँगने का ढङ्ग अलग था, गलत था और मैंने जब लोमश ऋषि से बार-बार गलत ढङ्ग से आग्रह किया तो उनके हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥8॥

बहुत देर तक रगड़ने से चन्दन की लकड़ी में भी अग्नि प्रकट हो जाती है। लोमश ऋषि अत्यन्त कृपालु थे लेकिन फिर भी मैं इतना अधिक उनसे आग्रह करने लगा कि अन्त में वे मुझ पर क्रोधित हो गए और उन्होंने मुझे श्राप दे दिया।

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥7॥
सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥8॥

अरे मूढ़, मूर्ख मैं तुम्हें सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ पर तुम उसे मानते ही नहीं और बार-बार तर्क करते हो। मेरे सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता है, कौवे की राजनीति करता है। हे मूर्ख! तेरे हृदय में पक्षी का बड़ा भारी हठ है। जिन बातों को तू सही मानता है, उसका तर्क करता है इसलिए जा तू चाण्डाल पक्षी हो जा अर्थात् कौवा बन जा। जब लोमश ऋषि ने इतना भयङ्कर श्राप दे दिया तो तुरन्त मेरी बुद्धि में आया कि वास्तव में, मैं कितना मूर्ख हूँ। हजार वर्ष पहले मैंने अपने गुरु से तर्क किया। उसका फल मैंने अजगर योनि में रहकर भोगा तो भी मेरी बुद्धि ठीक नहीं हुई। आज मैं लोमश ऋषि से तर्क करने लग गया तो मुझे श्राप तो मिलना ही था। मैंने लोमश ऋषि से कोई बात नहीं की और तुरन्त प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़कर उनका श्राप स्वीकार किया। उन्होंने कहा कौवा बन जा और मैं उड़कर वहाँ से निकल गया। जैसे ही मैं वहाँ से गया। लोमश ऋषि के हृदय में बड़ा पश्चाताप हुआ। वे अच्छे सन्त थे और उनको लगा कि मैंने क्या कह दिया? कोई आकर मुझसे राम जी की भक्ति माँग रहा था। कोई गलत बात थोड़ी कर रहा था? मैं उसको ज्ञान का उपदेश करना चाहता था और उसने मुझसे राम जी की भक्ति ही तो माँगी थी। मैंने गुस्से में आकर उसे कौवा बनने का श्राप दे दिया। यह मैंने बहुत गलत कर दिया। लोमश ऋषि पश्चाताप करने लगे। जहाँ वह कौवा उड़ कर गया था, लोमश ऋषि भी अपनी सिद्धि से उस स्थान पर पहुँचे। उस कौवे के प्रति पश्चाताप प्रकट किया। कौवे ने कहा- हे मुनि! आप पश्चाताप न करें। आप तो सिद्ध हैं, यह मेरे ही कर्मों का फल है कि मेरी बुद्धि अभी तक सुधरी नहीं है। आप को तो निमित्त बनाकर श्राप देने के लिए बनाया कि मेरी बुद्धि सही हो।

तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥112 क॥

लोमश ऋषि ने कहा कि मुझे तुम्हें श्राप नहीं देना चाहिए था और फिर उन्होंने कुछ समय के लिए मुझे अपने पास रखा और तब उन्होंने मुझे राम जी की कथाएँ सुनाई और रामचरित मानस का पूरा मण्डन किया और कहा -

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥6॥

यह रामचरितमानस से लिया है। तुम हनुमान जी के भी भक्त हो इसलिए तुमसे विस्तार से कह दिया। अब मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे हृदय में राम जी की प्रगढ़ भक्ति बसेगी। तुम चाहो तो इस कौवे योनि को छोड़कर पुनः ब्राह्मण योनि में जा सकते हो परन्तु मैंने मना कर दिया कि मैं तो अब इसी योनि में रहना चाहूँगा और इस योनि में रहकर ही मैं अपनी भक्ति करना चाहता हूँ।

लोमश ऋषि ने मुझे आशीर्वाद दिया कि तुम जिस आश्रम में रहोगे उसके चारों ओर अविद्या माया नहीं व्यापेगी। तुम ज्ञान द्वारा

बँधे रहोगे। तुम इच्छा मृत्यु रखोगे। तुम जब तक चाहोगे तब तक तुम्हारा शरीर रहेगा और तुम सब बातों को बिना परिश्रम जान सकोगे और राम जी के चरणों में तुम्हारा नित्य प्रेम होगा। गुरु का आशीर्वाद सुनकर आकाश में धवनि हुई कि तुम्हारा वचन सत्य होगा।

आकाशवाणी सुनकर मुझे इतना हर्ष हुआ और मेरा सारा संशय चला गया। गुरु के चरण कमल में सर नवा कर मैं बारम्बार हर्षित होकर इस आश्रम में आया। राम जी का दुर्लभ वर पा लिया और यहाँ निवास करते हुए मुझे सत्ताईस कल्प बीत गए हैं।

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥5॥

सात और बीस अर्थात् सत्ताईस कल्प मैंने यहाँ इस आश्रम में निवास किया। अब मैं यहाँ सदा श्रीराम जी के चरणों में निवास करता हूँ। पशु-पक्षी आकर मुझे सुनते हैं। जब-जब श्रीराम पुरुषोत्तम भगवान जी का अवतार होता है, अर्थात् सत्ताईस कल्पों में सत्ताईस बार मैंने राम जी के दर्शन किए और हर कल्प में मैंने राम जी के शिष्य के रूप में आशीर्वाद प्राप्त किया। जब वह शिशु रूप में होते हैं तब मैं उनके दर्शन करने जाता हूँ और फिर वापस आ जाता हूँ।

यह सारी कथा मैंने आपको सुनाई लेकिन इसमें मुख्य बात यह है कि इतना बड़ा वरदान पाने के बाद भी और सत्ताईस जन्मों में और सत्ताईस कल्पों में राम जी के दर्शन करने के बाद, अपनी स्मृति न भूलने के बाद भी, भगवान की माया कितनी प्रबल है कि एक जन्म में जब काकभुशुण्डि राम जी के दर्शन करने गए और बालक रूप में राम जी को खेलते हुए देख उनके मन में सन्देह आ गया कि क्या वास्तव में यह परमात्मा हैं? गरुड़ जी आप अपने बारे में कोई विचार मत कीजिए कि आपके मन में सन्देह आया है, आप मेरी स्थिति का विचार करो कि भगवान का वरदान पाकर भी मेरे हृदय में सन्देह आया था। भगवान तो अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदय में सन्देह आया तो भगवान को पता चल गया। उस बालक राम ने मेरी और हाथ बढ़ाया और मैं थोड़ा उछल कर दूर चला गया। जब मैं डर गया तो भगवान राम ने मेरी ओर और हाथ बढ़ाया। मैं फिर दूर चला गया। मैंने देखा कि मैं जितना दूर जा रहा हूँ वह हाथ मेरी तरफ बढ़ता ही जा रहा है। फिर मैंने देखा कि श्रीभगवान तो वहीं हैं और उनका हाथ ही बढ़ता जा रहा है। मैं वहाँ से उड़ चला। उड़ने के बाद भी वह हाथ आकाश में भी मेरी और बढ़ता चला गया। मुझे वरदान की शक्ति से दूसरे लोक में जाने का सामर्थ्य प्राप्त था तो मैं पृथ्वी लोक से स्वर्ग लोक चला गया। स्वर्ग लोक से ब्रह्मलोक चला गया और सब लोकों में वह हाथ मेरे पीछे-पीछे ही आता जा रहा था। सारे लोकों में भटक कर पुन: राम जी के चरणों में वापस आया और उनको सर नवाया तब जाकर उस हाथ ने मेरा पीछा छोड़ा और मैंने अपने माथे को फोड़ा कि मेरे मन में भी कैसा विचार आया?

गरुड़ जी महाराज विज्ञान से इस ज्ञान को बताते हैं। एक बार ज्ञान प्राप्त होने पर वह हमेशा टिका रहे, ऐसी बात नहीं है। यह बात मेरे साथ घटी है इसलिए एक बार समझ में आने पर भी उसका बारम्बार अभ्यास करना पड़ता है। कई बार साधकों को भी भ्रम हो जाता है कि अब तो मुझे यह बात समझ में आ गई है। अब मैं ठीक ही करूँगा। भगवान की माया इतनी प्रबल है कि जो गरुड़ जी महाराज भगवान के पार्षद हैं उन्हें अपने कन्धों पर बैठाकर चलते हैं, वह भी सन्देह में पड़ जाते हैं। जो सती माता शिवजी की पत्नी हैं वह भी भगवान की माया पर सन्देह करके भगवान शिव को खो देती हैं। जो काकभुशुण्डि जी महाराज सत्ताईस कल्पों तक स्मृति को रखकर भगवान की भक्ति करते रहते हैं उनको भी सन्देह हो जाता है।

फिर हम और आप जैसे साधारण भक्तों का तो विचार ही क्या है?
अश्रद्धा इसका बड़ा ही मूल कारण है। श्रीभगवान कहते हैं-

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं

अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि काकभुशुण्डि महाराज जी को प्रणाम करके उनका स्मरण करते हुए हम गीता में आगे बढ़ें।

श्रीभगवान कहते हैं, हे परन्तप! इस सुकृत कर्म में, श्रद्धा रखकर तू संसार चक्र में न पड़।

अश्रद्धा - अश्रद्धा के कारण ही मनुष्य का बड़ा नाश होता है इसलिए अगर जीवन में साधना में बल चाहिए तो श्रद्धा से ही लाभ हो सकता है।
अब चौथे, पाँचवें और छठे श्लोक में बहुत भ्रम होने वाला है। अब हम कथा से निकल कर अपनी बुद्धि को जागृत करते हैं।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन:- अब भगवान अपने स्वरूप का वर्णन करते हैं।
श्रीभगवान कहते हैं- हे अर्जुन! मुझ निराकार परमात्मा से यह सारा जगत जल में बर्फ के समान ही पूर्ण है। मेरे अन्तर्गत सङ्कल्प के आधार पर विस्तृत है किन्तु वास्तव में, मैं उनमें नहीं हूँ। यह सारा जगत मुझसे ही परिपूर्ण है।

सर्व भूतानी - जितने भी प्राणी हैं वे सब भूत हैं। सभी भूत पदार्थ मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न हुए हैं लेकिन मैं उनमें नहीं हूँ।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं- हे अर्जुन! ये सब भूत मुझमें स्थित हैं, किन्तु मेरी ऐश्वर्य शक्तियों को देख। मैं भूतों का भरण-पोषण करने वाला और भूत उत्पन्न करने वाला भी हूँ। मेरा आत्मा वास्तव में भूत नहीं है। श्रीभगवान कहते हैं कि भूत मुझ में स्थित हैं परन्तु मैं भूत में स्थित नहीं हूँ।

सारा संसार मुझसे ही बना है। भूत भी मेरे से उत्पन्न हुए हैं लेकिन न मैं उनमें हूँ और न ही वे मुझ में हैं। अभी तक तो हमने यही पढ़ा है कि कण-कण में श्रीभगवान हैं। हमारे हृदय में भी हैं परन्तु वे आज अलग ही बात कर रहे हैं। उन्होंने हम लोगों को अपने से हटाकर दूर कर दिया। सभी जगह मैं व्याप्त हूँ किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा

तुम मान लो।

विवेचन:- अब श्रीभगवान थोड़ा सा समाधान देते हैं। वह कहते हैं कि जैसे आकाश में चलने वाली वायु सर्वत्र व्याप्त है, ऐसे ही मैं सभी जगह हूँ।

जैसे जल में बर्फ। बर्फ का निर्माण पानी से होता है परन्तु एक बार जल बर्फ बन गया तो हम उसे जल के रूप में नहीं पी सकते। हम कह सकते हैं कि उसे पिघलाकर हम पी सकते हैं तो उसे पहले जल बनाना पड़ता है जब तक वह बर्फ है तब तक हम उस जल की प्राप्ति नहीं कर सकते।

दूध से दही बनता है, फिर हम दही में से दूध को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। दही भी दूध से बना हैं परन्तु उसमें दूध नहीं है और जब तक दूध है तब तक उसमें दही नहीं है।

जब हम समुद्र तट पर जाते हैं तो वहाँ पर बहुत सारी तरङ्गे दिखाई देती हैं। यदि हमसे कोई कहे कि कोई एक तरङ्ग को पकड़ कर ले आओ तो हम उसे पकड़ नहीं सकते। हमारे हाथ में केवल जल ही आएगा। उस तरङ्ग का निर्माण जल से ही हो रहा है लेकिन न तो उस तरङ्ग में जल है न ही जल में वह तरङ्ग है। किसी भी दृष्टि से उस तरङ्ग को पकड़ा नहीं जा सकता। तरङ्ग हमें दिख रही है परन्तु उसे पकड़ना सम्भव नहीं है। शान्त जल में कोई भी तरङ्ग नहीं होती है और तरङ्ग में भी जल नहीं है।

कलाकार ने कैनवास पर एक पेंटिङ्ग बनाई। उसने अलग-अलग रङ्गों से अलग-अलग आकार बनाए। जैसे नदी, पहाड़, पर्वत सब कुछ बनाए। हम उसको देखकर कहते हैं, यह पहाड़ है, पर्वत है, यह वृक्ष है, परन्तु यह बना किस स्याही से? अब हम इससे स्याही को प्राप्त नहीं कर सकते। अब उसमें स्याही नहीं है, अब वह एक आकृति है।

बर्फ वाले स्थान पर बर्फ के घर बनाए जाते हैं तो हम कहते हैं यह बर्फ का घर है। क्या यह बर्फ है? हम कहेंगे नहीं, यह तो रहने का स्थान है। इसे बर्फ को काटकर बनाया है परन्तु यह बर्फ नहीं है।

परमात्मा से ही सारे जगत की उत्पत्ति हुई है परन्तु यह वैसे ही है जैसे जल में तरङ्ग है। जैसे तरङ्ग दिखती तो है परन्तु उसमें से जल की प्राप्ति नहीं की जा सकती। वैसे ही संसार दिखता है परन्तु इसमें से परमात्मा की प्राप्ति नहीं की जा सकती।

परमात्मा चैतन्य है, वह अक्षर है, वह सनातन है, वह कभी उत्पन्न हुआ नहीं है और न ही नष्ट होगा। वह कभी घटता भी नहीं, बढ़ता भी नहीं और आकार भी नहीं बदलता परन्तु यह जो संसार है, यह हर क्षण बदलता है।पिछले साल यह जैसा था, अब यह वैसा नहीं है। इसमें हर वस्तु उत्पन्न होती है और समाप्त होती है। हर चीज जन्म लेती है और मरती है। हर चीज पहले थी और आगे नहीं रहेगी। परमात्मा की वृत्ति अक्षरवृत्ति है। अगर यह परमात्मा संसार में है तो यह संसार अव्यय हो जाएगा फिर यह सनातन हो जाएगा और कभी बदल नहीं सकेगा। परमात्मा की शक्ति से ही संसार की उत्पत्ति हुई है। यह अक्षर है इसलिए इसमें परमात्मा निवास नहीं करते हैं।

जिस प्रकार हम रोज रात को सोते हैं और सोने के बाद हमें कोई सपना आता है। सपने में कुछ भी हो सकता है। हम कहीं भी पहुँच सकते हैं। क्या यह स्वप्न सत्य है या हमारी जागृत अवस्था सत्य है? स्वप्न अवस्था में वही सत्य लगता है। यदि सपने में हमें कोई भी कठिनाई दिखाई देती है तो हमारे माथे पर पसीना आ जाता है। अच्छा सपना देखने पर हम पूरा दिन खुश रहते हैं। जब हम जागृत अवस्था में होते हैं तो हम सोचते हैं हमने कितना खराब सपना देखा। अच्छा हुआ वह सपना ही था। परमात्मा से ही इस सारे संसार की स्वप्न अवस्था का निर्माण होता है। ब्रह्म ज्ञान की जागृति होने पर विश्व की स्वप्न अवस्था का लोप हो जाता है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहीं ।

प्रेम गली अति सांकरी जामें दो न समाहीं ॥

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥5॥

राम जी शबरी को कहते हैं कि मेरे दर्शन का परम फल यही है कि जीव अपने सही स्वरूप को पहचान जाता है। इस स्वप्न अवस्था से बाहर आ जाता है।

इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन होता है।

।।हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं हरि शरणं।।

प्रश्नोत्तर सत्र:-

प्रश्नकर्ता:- अरुन्धति दीदी
प्रश्न:- कल्प से क्या अभिप्राय है?
उत्तर:- ब्रह्मा जी का एक दिन एक कल्प के बराबर होता है। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनु का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में बहत्तर चतुर्युगी होते हैं। एक चतुर्युगी में कलयुग के चार लाख बत्तीस हजार वर्ष, द्वापर के आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष, त्रेता के बारह लाख छियानवे हजार वर्ष और सतयुग के सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष होते हैं। इस प्रकार एक चतुर्युगी में तैतालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं।
1 कल्प = 14 मन्वन्तर×72 चतुर्युगी ×4320000 वर्ष।

प्रश्नकर्ता:- अलका दीदी
प्रश्न:- तृतीय श्लोक में अश्रद्दधानाः का क्या अर्थ है?
उत्तर:- अश्रद्दधानाः का अर्थ है- श्रद्धा से रहित। इसकी बड़ी सुन्दर कथा है। एक बार शिव जी और पार्वती जी भ्रमण के लिए निकले। कुम्भ का स्नान चल रहा था। पार्वती जी ने शिवजी से पूछा कि गङ्गा में स्नान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तो क्या इन सभी लोगों के पाप नष्ट होकर यह मोक्ष को प्राप्त होंगे? शिव ने उत्तर दिया, नहीं। तब पार्वती जी बोलीं तो क्या शास्त्रों में झूठ लिखा है? शिवजी ने उत्तर दिया, नहीं। पार्वती जी ने कहा आप दोनों ही बातों के लिए मना कर रहे हैं, तब शिव जी ने कहा, जिसकी श्रद्धा है उसी के पाप नष्ट होंगे। जो बिना श्रद्धा के स्नान कर रहा है उसके पाप नष्ट नहीं होंगे। शिव जी ने अपनी बात समझाने के लिए पार्वती जी के साथ मिलकर सभी की एक परीक्षा लेने का निश्चय किया। शिव जी ने एक कोढ़ी का रूप धारण कर लिया और एक गड्ढे में गिर गए। पार्वती जी उनकी पत्नी का रूप धारण कर गड्ढे के पास बैठकर जोर-जोर से विलाप करने लगी कि कोई मेरे पति को बचाओ। जैसे ही कोई गड्ढे के निकट आता तो पार्वती जी कहती कि इनको श्राप मिला है। यदि कोई भी व्यक्ति जिसने किसी भी प्रकार का पाप किया है और वह इनको छूता है तो वह भी कोढ़ी हो जाएगा। इस प्रकार की बात सुनकर जो भी आता वह बिना सहायता किए लौट जाता। इस प्रकार शाम हो गई। किसी ने भी शिवजी को गड्ढे में से निकालने का प्रयत्न नहीं किया तभी एक नवयुवक भागता हुआ आया। जैसे ही पार्वती जी उसे शर्त के बारे में बताने लगीं उसने कहा, हाँ-हाँ मुझे ज्ञात है। मैं अभी-अभी गङ्गा जी में स्नान करके आया हूँ, मेरे सभी पास नष्ट हो गए हैं। ऐसा कहते हुए वह सीधे गड्ढे में कूद गया और शिव जी को बाहर निकाल कर ले आया। शिवजी और पार्वती जी मुस्कुराने लगे कि इतनी सारी भीड़ में एक व्यक्ति ऐसा मिला जिसमें सच्ची श्रद्धा थी।

प्रश्नकर्ता:- प्रेम नाथ उपाध्याय भैया
प्रश्न:- इस अध्याय के नाम पर प्रकाश डालिए।

उत्तर:- राजविद्याराजगुह्ययोग अर्थात् सब विद्याओं का राजा और बहुत ही गूढ़ ज्ञान से युक्त अध्याय।

।। ॐ श्री कृष्णर्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||